श्री सीतारामचन्द्राभ्यां नमः।

श्रीसीताराम शरण भगवान् प्रसाद जी

की

सचित्र जीवनी

बख़्तियारपुर (ज़िला आरा) निवासी

हरिश्चन्द्र चरित लेखक

श्री बाबू शिवनन्दन सहाय

विरचित।

चर्ना (ज़िला सारन) निवासी

श्री बाबू गोविन्ददेवनारायणशरण बी.ए.

द्वारा

भक्तजनों के चित्तविनोदार्थ

प्रकाशित।

पटना-"खड्गविलास"-प्रेस बांकीपुर।

श्री बाबू चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित।

१९०८

कलि सम्वत् ५००९]   प्रथमबार १०००   [हरिश्चन्द्र सम्वत् २४

Presented to the
IMPERIAL LIBRARY
CALCUTTA

By
Mr. Govinda Deva
Narayanasarana, B.A.

"जय श्रीसिय सियप्राणप्रिय, सुखसाशील निधान।
भरत, लखन, रिपुदमनजय, जनरक्षक हनुमान॥"

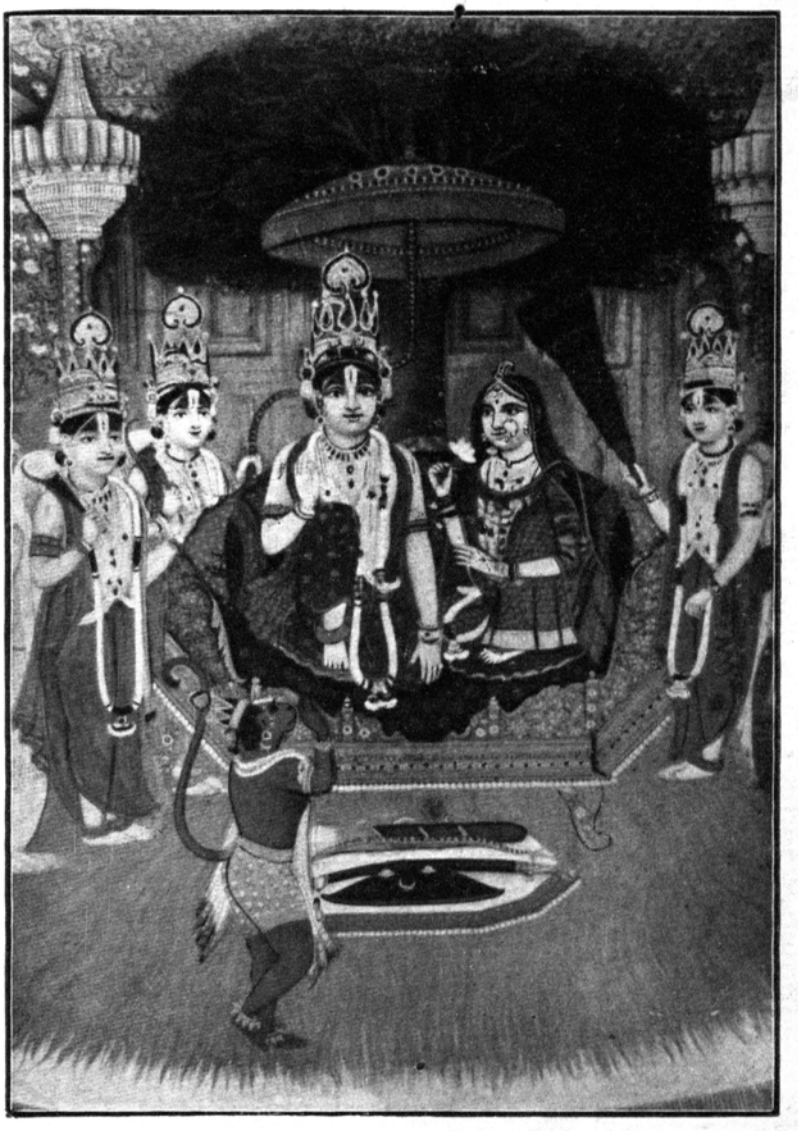

"यह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेश।
बरनइ शारद शेष श्रुति सो रस जान महेश॥"

समर्पण ।

श्री गुरवे नमः ।

सोरठा ।

गुरु सम हित नहिं आन , जासु बचन हर हृदयतम ।
करत अचल कल्यान , प्रेम जगावत ईस को ॥
सादर सहित सनेह , बन्दों निसदिन पदपदुम ।
हरिभक्ती सुठि मेह , उरथल नित सींचत रहै ॥

श्रीगुरुवर्य्य !

आप ही के चरणकमलों का आश्रय ग्रहण करने से और आप ही की शिक्षा तथा सदोपदेशों के प्रभाव से सन्त महात्माओं के चरणों में हमें नेह जन्मा है । इस पुस्तक में हम ने एक परम वैष्णवमहात्मा का चरित्र वर्णन किया है जो श्रीसीताराम जी के अनन्योपासक हैं और सब धर्म्मवालों से भ्रातृ भाव का बर्ताव रखते हैं । महात्मा का महात्मा ही विशेष आदर करते हैं और महात्मा के सच्चरित्र श्रवण से महात्मा को ही अधिक आनन्द प्राप्त होता है । अतएव यह पुस्तक आप ही की सेवा में अर्पण करने योग्य है । इस लिये आप ही को अर्पण की जाती है । कृपा कर इसे सहर्ष अंगीकार कर इस चरणसेवक को कृतार्थ कीजिये ।

आप का पादपद्म मधुकर

शिवनन्दन ।

भूमिका।

श्री गणेशाय नमः।

ज़िला छपरा अर्नाग्रामनिवासी बाबू गोविन्ददेवनारायण शरण बी० ए० की सम्मति से यह जीवनी लिखी गई है। उन्हीं ने इस के लिखने का हमारे चित्त में अनुराग बढ़ाया और इस के लिये सामग्री भी प्रस्तुत की। पश्चात् हमारे चरित्रनायक ने भी कृपापूर्वक कई एक स्वरचित पुस्तकें प्रसादस्वरूप हमारे पास भेजकर हमारा उत्साहवर्द्धन किया। उन पुस्तकों से भी बहुत सी बातें संगृहीत हुई हैं। आज अग्रहण शुक्ल पञ्चमी को—जिस दिन श्री जनकपुर में राजीव-नयन करुणा-अयन शत्रुमदगञ्जन, भवभयभञ्जन, भक्तउरचंदन श्री रघुनन्दन के विवाहमंगल का महोत्सव हुआ था,—उन के एक अनन्य भक्त का यह जीवनचरित्र लिख कर तैयार करने का असीम आनन्द हम को प्राप्त हुआ। आशा है कि पाठकवृन्द इस पुस्तक के नायक के सच्चरितों के पाठ तथा अनुकरण से काया-गढ़-निवासी शत्रुओं के शमन में समर्थ हो कर निजात्मा का कल्याण एवम् मनुष्यजीवन को सफल करेंगे।

यह जीवनी किसी सदाचारी धार्म्मिक सज्जन पुरुष को लिखना चाहता था क्योंकि महात्माओं का पवित्र जीवनचरित्र ऐसे ही लोगों को लिखना उचित है, हमारे ऐसे काम क्रोधादि का किंकर और पापपरायण व्यक्ति को नहीं। तब हरि-जन-गुण-गान में हरि-यश कीर्त्तन के समान ही अपना निश्चय कल्याण जान कर हम ने ऐसी धृष्टता की है। सरलचित्त सज्जन हमारी ढिठाई क्षमा कर इसे सादर पढ़ेंगे और इस बुद्धिमलीन दीन की सद्गति के लिये आशीर्वाद दे दीनबन्धु अशरणशरण भगवान से प्रार्थना करेंगे।

अख़तियारपुर, ज़िला आरा।
अग्रहण शुक्ल पञ्चमी संवत् १९६४

सन्तों का कृपाभिलाषी
शिवनन्दन।

श्री सरस्वत्यैनमः ।

श्री सीताराम शरण भगवानप्रसाद सम्बन्धी श्री बाबू रघुवीरनारायणशरण * कृत अंग्रेज़ी काव्य का ग्रन्थकार द्वारा अनुवाद ।

१. गाओ, शारद, गान करो, तुम मधुर तान सों
जासु मोहनीमंत्र करै मोहित सब मन को,
करो वाहि गुन गान प्रेम जिह केर चतुर्दिक
श्री वैदेहीचरन कमल दृढ़वेष्टित है इक

२. अरू चतुर्दिक तासु चरन जो, सुठि सनेह हित
श्री विदेहजा केर, गयो खोजत मिथिला छित–
एक अलक्षित वही परम पितु अहै सपन को
जा कछु है यह काल अरू यह काल नहीं जो.

३. यदपि अदपि इक युवा, कली इक कोमल भाई,
पापक प्रती सपर्श सहमि रह दूर पराई,
सुन्दर साजन सजित पाप नहिं ताहि लुभायो
मनुष देह मों मनहु कोऊ इक देव सुहायो.

* पृष्ठ १०५ देखिये ।

४. युवा, लजीली, छबीमयी जिमि वर सुन्दरिगन,
पूजत प्रेम सुदेव-प्रेम कर राज्य तासु मन;
जिवन सर्वदा तासु सुहायो—यह भूतल पर,
एक मधुरतापूर्ण, स्वर्ग सुखसपन मनोहर.—

५. एक सपन सम्पन्न सुक्ख ! इक सुखमय सपना
तो सम जिह मों थकित जीव, है मग्न सु अपना
ध्यावत है परब्रह्म सर्वदा मन चित लाई,
सकल जगत-अरु तासु विभव सों- नेह नसाई.

६. वा थल सों जहँ स्वर्ग समीरन वह सुखदाई,
बली सुरक्षक शक्तिगनहि बल पाय सुहाई,
एक निवासी स्वर्गसदन को जौन मीत बर,
उत्तम कारज साधन हित आयो सो भू पर .

७- भारत जननी ! सो तेरो गौरव अभिमाना-
करु यह रिषी अतुल्यहि प्यार अरू सन्माना:
युग युग ता कर नाम गूंजिहैं बारहु पासा
होय सम्मिलित संग तोर सन्तति इतिहासा.

Shri Sitaram

Lines

on

Shri Sitaram Sharan Bhagwan Prasad ji.

by

Raghubir Narayana Sharan.

1. Sing, Muses, sing, in accents sweet
Whose magic may enchant each mind,
Of him whose love is fast entwined
Round Shri Vaidehi's lotus feet

2. And round the feet of Him who sought,
For Her sweet sake, the Maithil land—
The one mysterious Father grand
Of what is now and what is not.

3. While yet a youth, a tender bud,
He shrank from every touch of vice,
And dress'd-up Sin could not entice
An angel clothed in flesh and blood.

4. Like youthful maidens, fair and coy,
He worships Love—Love rules his brain;
His life has been, on earthly plain,
A sweet, elysian dream of joy.—

5. A dream of bliss!—a blessed dream
Like that in which the weary Self,
Estranged from world—its power and pelf—,
Is merged in thoughts of Self Supreme!

6. From where the heavenly breezes sigh,
Upheld by mighty Guardian Powers,
A dweller of ethereal bowers,
He came to earth on mission high.

7. O Ind! he is thy pride and glory—
Revere and love this peerless sage:
His name shall ring from age to age
Commingled with thy children's story!

श्रीसीताराम

रूपकला (श्रीसीतारामशरण भगवान्प्रसाद)
श्रीभक्तमालतिलककारिणी।
रूपकलाकुंज, प्रमोदवन, श्रीअयोध्याजी।

(दो०) सिय-सेवा-अभिलाषिणी रूपकला की नेम।
करजोड़े सन्मुख खड़ी सविनय सदा सप्रेम॥

कलिसम्वत ५००९ सम्वत १९६५

रूपकला

सवैया—सारी किनारीलगी पहिने रंगना कर मों दुहुं फूल को सोहै। आंखिन पै चसमा "ब्रजवल्लभ *" भाल पै ढीको भलो मन मोहै। जोड़े दुहूं कर सांची सोहागिनि प्रेम पगी पियमूरति जोहै। "रूपकला वर कुंज" खड़ी, सियकिंकरि "रूपकला" सम को है? ॥ १ ॥

सुठि सील सोहाग की मूरति सी पियप्रेम मों आज पगी नवला हैं। सुधि देह की दीनि बिसारि सबै रघुबीर सों राखति नेह भला हैं। इक प्रेम की साधना साधति हैं इक नाम की आस हिये प्रबला हैं। गुनखानि सुजानि, सेआनी सती सियदासी अनूपम "रूपकला" हैं ॥ २ ॥

अनुरागी बिरागी पिया रँग मों रँगी प्रेम को बैन उचारति हैं। उपदेस सुभक्ति बिराग को दै भवकूप सों पापी निकारति हैं ॥ "ब्रजवल्लभ" आनन दिव्य बिलोकि सखी सब प्रान को वारति हैं। बर इन्दुकला जस "रूपकला" भ्रम को तमघोर निवारति हैं ॥ ३ ॥

कबित्त—लोभ नहिं आवे नेरेन्डर सों दुराय जात क्रोध नाम सुनि हाथ मलि पछतात हैं। मोह मद ममता को गम नहिं वां पै जहां "रूपकला" अनुपम सरुप लखात हैं ॥ मन "ब्रजवल्लभ" अपार दया दीनन पै देखि दीनबन्धु मन माहिं हरषात हैं। सब बिधि लायक सहायक गरीबन के मानो प्रेम बिमल सदेह दरसात हैं ॥ ४ ॥

---

* ग्रंथकर्त्तात्मज प्रिय बाबू श्री ब्रजनन्दन सहाय, वकील आरा।

श्रीसीताराम

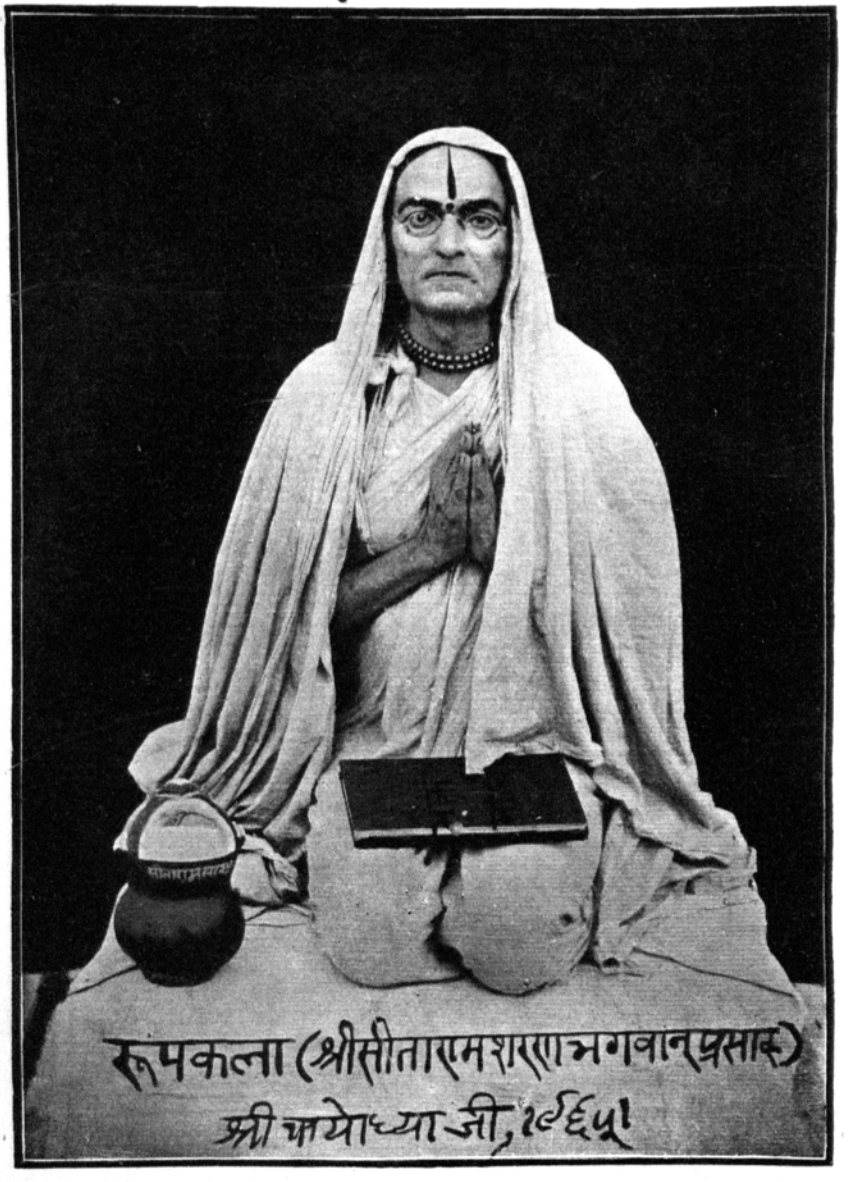

ART PRESS

श्रीसीताराम शरण भगवानप्रसाद

कुण्डलिया ।

कायथ-कुल-भूषन ललित, श्री " भगवानप्रसाद " ।
अवनि सीस धरि बार बहु, बिनवौं सरसिजपाद ॥
बिनवौं सरसिजपाद रावरो सुजस उचारौं ।
भवजल टारनहार सहज यह मंत्र बिचारौं ॥
" ब्रजबल्लभ " * गुनगान करत रावर है अनुखन ।
सन्तन को सिरमौर नाथ कायथ-कुल-भूषन ॥ १ ॥

छप्पै ।

प्रेमिन को सिरताज जयति भक्तन हितकारक ।
जय जय सुभ-गुन-खान बिकट अघ-कटक-संहारक ॥
प्रेमतत्व को गूढ़भेद सब जाननहारे ।
निमिष निमिष हरिनाम जपत सुर सन्त पिआरे ।
भन "ब्रजबल्लभ" सादर सुजस, नेह दया सागर रुचिर ॥
प्रभु कृपा करहु यहि दास पै चञ्चल चित होवे सुथिर ॥२॥

* ग्रंथकर्त्तात्मज चिरञ्जीवी बाबू श्री व्रजनन्दन सहाय वकील आरा ।

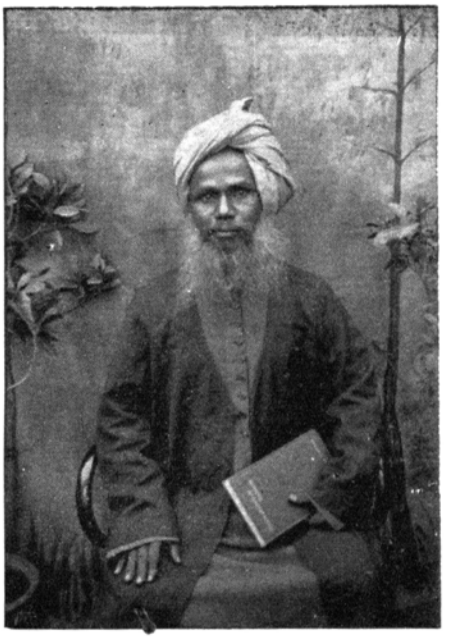

श्रीबाबू शिवनन्दन सहाय,
हरिश्चन्द्र चरित्र लेखक, ग्रन्थकर्त्ता।

ART PRESS

श्रीसीताराम शरण भगवान प्रसाद

की

वंशावली ।

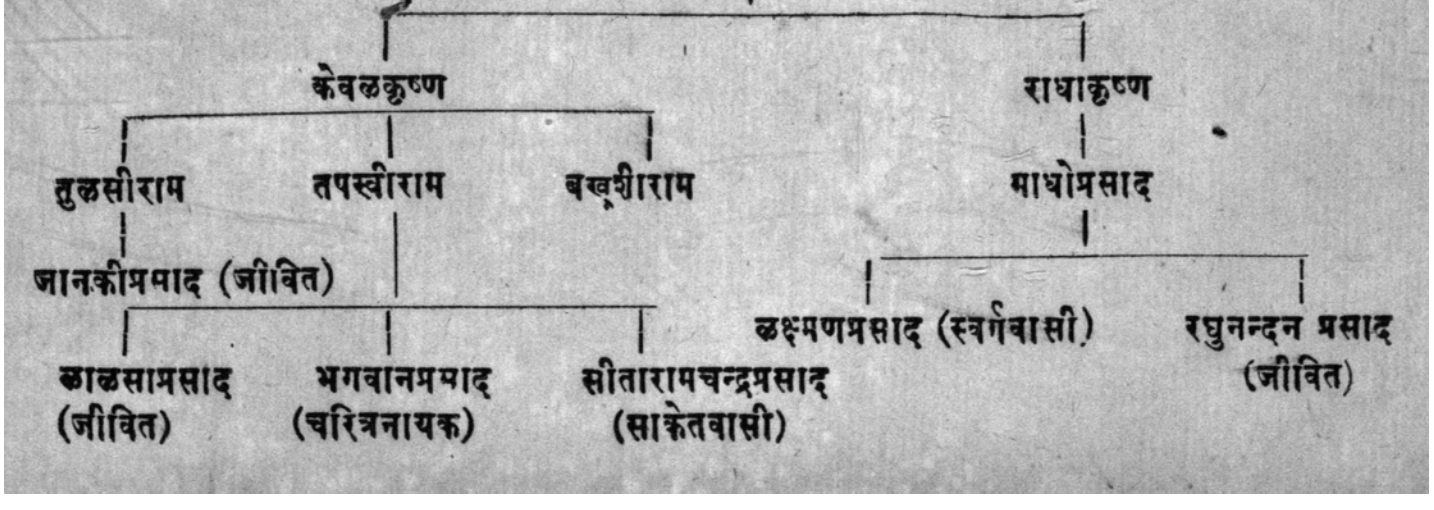

मङ्गलाचरण ।

सोरठा ।

गुर चरनन सिरनाय, बन्दौं गनपति जोरि कर ।
सादर सेस मनाय , प्रनवौं पुनि श्रीगङ्गधर ॥
ध्याऊं आठो याम , पदपंकज रघुबीर को ।
सोभा ललित ललाम , लाजत कोटिक मार लखि ॥
चरनजोतिपरकास , हरत महातम हृदय को ।
ज्ञानक होत बिकास , लहत महामुद मनमधुप ॥
लंबबाहु दुहुँ ओर , निज जन आस्वासन करत ।
दान ओर नहिं छोर , निरख न दूसर द्वार दिसि ॥
सुन्दर उर विस्तार , देत सूचना सबन हीं ।
यह करुना-आगार , किमि भटकत भरमत फिरत ॥
मृदुमुसकानविकास , हँसत सदा यमराज पर ।
जाहि मोर इक आस , कहा डरावत ताहि तू ॥
नीरद नील सुस्याम , कुंडलदुति विद्युतसरिस ।
भक्तनहिय सुठिठाम , बरसत करुनाजल सदा ॥
उपजत प्रेम अपार , भक्ती-फल-दायक अलभ ।
पाइ जाहि सुखसार , भक्त न चाहत और कछु ॥
श्री सिय सोभाखान , उक्सा कासों दीजिये ।
उर चरननयुग ध्यान , धारिय सदा सनेह सों ॥
पवनपुत्र बलधाम , प्रीतिपात्र रघुनाथ के ।
रामहिं सों बस काम , और न चाहत काहु को ॥
बिनवौं जुगकर जोरि , अभिलाषा मम पूरिये ।
मनमधुकर नहिं मोर , दम्पति पदपंकज तजै ॥
रामभक्त कर गाथ , लिखन चहौं अति हिय ललकि ।
सफल मनोरथ नाथ , होय कृपा अस कीजिये ॥

—※—

श्रीसीतारामचन्द्राभ्यांनमः

श्री हनुमते नमः

श्रीसीताराम शरण भगवान प्रसाद जी
की
जीवनी

छप्पै ।

सुफल किये निज जन्म जगत महँ आय सियाने ।
विषयभोग विष तुल्य जान भूलिहु न लुभाने ॥
बालकाल हीं सियाराम पदपंकज पागे ।
सकल जगत आधार जौन तिहि महँ अनुरागे ॥
सोइ सुमिरन सोइ ध्यान नित, चित उमहत अहलाद तें ।
भगवानप्रसाद सुभक्तवर, भे भगवान प्रसाद तें ॥

प्रथम परिच्छेद ।

ग्राम ।

बिहारप्रान्त में कलि-कलुष-विनाशिनी पतितपावनी श्री सरयू के वामतट पर ज़िला सारन का प्रधान स्थान छपरा नगर विराजमान है जिस से ६ मील पूर्व चिरान्द गांव * के पास श्रीसरयू और गङ्गा का संगम हुआ

---

* यह एक बहुत पुराचीन स्थान है। यहां च्यवनऋषि का आश्रम था और दो तलावों को लोग "चिरान्दमहात्मा" वर्णित "जियच्छकुण्ड" और "ब्रह्मकुण्ड" बतलाते हैं। प्रतिवर्ष कार्तिक की पूर्णिमा को यहां मेला होता है। इसे लोग राजा मयूरध्वज की

है। इसी छपरा नगर के उत्तर-पूर्व ७ मील पर गोआ परगना में मोबारकपुर नामक एक प्राचीन गांव है जिस के समीप ही खोदाई बाग़ में भारी हाट लगा करता है और गोरखा (गँरखा)*गांव तो एक छोटा सुन्दर क़सबा की ही छटा दिखलाता है। मोबारकपुर से कुछ दूर पर पटेढ़ा गांव में लोग श्री धौंसीराम जी के गढ़ का अवशिष्टचिन्ह बतलाते हैं और कहते हैं कि मुसल्मानी राज्यकाल में धौंसीराम जी का बड़ा औजमौज था और राजदरबार में उन की बड़ी प्रतिष्ठा थी। परन्तु राजदरबार में मान्यास्पद होना और राजा का स्नेहभाजन बनना भी तो प्रायः महा आपत्ति ही का कारण हो जाता है, क्योंकि कालान्तर में यह शत्रुवृद्धि करता है और प्रायः जान का ग्राहक बन जाता है। कारण यह, कि प्रसिद्ध कहावत के अनुसार, राजा के कान होते हैं आंखें नहीं होतीं, उन से जिस के विषय में जो कुछ भली बुरी बातें कही जाती हैं उन्हीं को सुनकर वे प्रायः कार्य्य कर बैठते हैं। इसी से बुद्धिमानों का उपदेश है कि राजाओं के

राजधानी बताते हैं। वह बड़ा धार्म्मिकराजा माना जाता है। कहते हैं कि एक बार ब्राह्मणवेषधारी श्रीनारायण ने उस के पुत्र का दक्षिणार्द्ध भाग कोई यज्ञसम्पन्नार्थं आरा से चीर कर मांगने पर वह अपनी स्त्री के साथ आरा लेकर उस का शरीर स्वयं चीरने लगा था। उस की धर्म्मपरायणता देख पीछे ईश्वर ने उसे उस कार्य्य से निवारण किया, उस के पुत्र का शरीर पूर्ववत स्वस्थकर दिया और आरा को गङ्गा की दूसरी ओर फेंक दिया। वह शाहाबाद में एक-चक्रापुरी में गिरा और तभी से वह नगर आरा कहलाने लगी। इसी चिराग्द से उत्तर-पूर्व वेलवा (पुराचीन वेलुवा) में गौतमबुद्ध का निर्वाण भी बताते हैं।

स्वभाव से सर्वदा सावधान ही रहना उचित है। ऐसे ही स्वभाव के कारण धौंसीरामजी के माथे भी एकबार वज्र टूटही तो पड़ा। आप तत्कालीन राजा के स्नेहपात्र होने के बदले क्रोधभाजन बन गये। छल पाषण्ड से उन का प्राण भी अपहृत हुआ और उन के दुर्ग की भी दुर्दशा हुई। सुनते हैं कि उन के वंशज अभी तक वर्त्तमान हैं।

पूर्वोक्त मोबारकपुर एक कायस्थस्थान है अर्थात् वह कायस्थों की एक पुरानी बस्ती है और वहां कायस्थ श्रीवास्तव (दूसरे) अधिकतर वास करते हैं। परन्तु किसी समय वह मुसल्मानों का एक प्रधान स्थान था ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है। एक तो उस का नाम ही मुसल्मानी, दूसरे वहां मोबारकशाह नामक एक सुविख्यात पीर का समाधिस्थल माही नदी के तट पर एक आम्रकानन में अद्यापि वर्तमान है। पहिले आसपास में उन की समाधि की बड़ी प्रतिष्ठा थी और आज भी उस प्रान्त के लोग, क्या मुसल्मान, क्या हिन्दू, सभी अपनी मनस्कामना सिद्ध होने पर उन की समाधि पर शीरनी न्याज़ कराते अर्थात् मिठाई चढ़ाते हैं। वहां अब भी मुसल्मानों का अभाव नहीं है।

जो हो, मोबारकपुर ग्राम सचमुच बहुत मोबारक है। केवल इसी से नहीं कि किसी समय वहां मोबारकशाह विराजमान थे, परन्तु वहां पण्डित प्रह्लाददत्त जी, शिवचरण भक्त तथा श्री अवधविहारीशरण जी और भी हरिभक्त होते आये हैं और हमारे चरित्रनायक श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद जी ने उसी ग्राम के ईश्वर-भक्ति-परायण (क़ानूनगोयसुल्तानपुरी उपाधि भूषित) एक कायस्थ कुल में जन्म ग्रहण किया।

द्वितीय परिच्छेद ।

पूर्वज ।

हमारे चरित्रनायक के प्रपितामह का नाम मु० शम्भु-दत्त था । आप एक योग्य सज्जन पुरुष थे । उन के दो पुत्र हुए—जेष्ठ, मु० केवलकृष्ण जी और कनिष्ठ, मु० राधाकृष्ण जी । इलाहाबाद से २० मील पर आलमगंज नामक स्थान में एक नील की कोठी थी । एम० आर्नल्ड साहिब उस के अध्यक्ष थे । उसी में मु० केवलकृष्ण जी मीरमुन्शी का काम करते थे । उन का वहां बड़ा अधिकार था । सब लोग उन का बड़ा सम्मान करते थे और वे एक लोकप्रिय सुजन थे । धर्म्म में भी उन की बड़ी श्रद्धा और आस्था थी । काम काज से अवसर मिलने पर वे सदैव सत्संग का रस पान किया करते थे । उन को तीन पुत्र हुए–मु० तुलसीराम, मु० तपस्वी राम और मु० बख़्शी राम । मु० बख़्शीराम को कोई सन्तति नहीं हुई । मु० तुलसीराम को एक पुत्र बाबू जानकी-प्रसाद हुए जो सब इन्सपेक्टर स्कूल थे और अब पेन्शन पाकर कभी घर और कभी श्रीअवध में रह कर ईश्वरभजन* में समय व्यतीत करते हैं । मु० तुलसीराम जी बड़े धार्म्मिक पुरुष और श्री १०८ रामानन्द स्वामी सम्प्रदाय के वैष्णव थे । अन्त में वैरागी हो कर आप श्री अयोध्या में रामघाट पर निवास करते थे ।

---

* ईश्वरभजन के लिये इन्हों ने स्वग्राम मोबारकपुर में एक छोटा सा मन्दिर भी बनवाया है ।

मु० तपस्वी राम जी भी श्री १०८ स्वामी रामानन्द जी महाराज के सम्प्रदाय के श्री रघुनाथदास * जी के एक

श्री गुरुपरम्परा।

"श्री[1]रामचन्द्रं सी[2]तांच, सेने[3]शं, शठद्वेषि[4]णम्।
श्री[5]नाथं, पुण्डरी[6]काक्षं, [7]राममिश्रं च, या[8]मुनम् ॥१॥
पूर्ण[9], रा[10]मानुजं चैव, कूरे[11]शंच, परा[12]शरम्।
लो[13]कं, दे[14]वाधिपंचैव, श्रीशैले[15]शं, वर[16]वरम् १६ ॥ २ ॥
न[17]रोत्तमं च, ग[18]ङ्गाधं, स[19]दं, रा[20]मेश्वरं तथा।
द्वा[21]रानन्दं च, दे[22]वं च, श्यामा[23]नन्दं, श्रु[24]तं तथा ॥३॥
चिदा[25]नन्दं च, पूर्णं[26] च, श्रिया[27]नन्दं च, हर्य[28]कम्।
रा[29]घवानन्द शिष्यं श्रीरा[30]मानन्दं च संश्रये ॥ ४ ॥
तस्य शिष्यं सुरसु[31]रानन्दं, स्वामीपदाङ्कितम्।
ततः श्रीवलि[32]यानन्दं, सैडरि[33]यानन्द नामकम् ॥ ५ ॥
श्रीमद्धिहारिदा[34]सञ्च, राम[35]दासं तथैव च।
विनोदा[36]नन्द नामानं, धरणीदा[37]स नामकम् ॥ ६ ॥
श्रीमन्तं करुणपूर्वंनिधा[38]नाख्यं समाश्रये।
श्रीमत्केवल [39]नामानं, प्रसादो रा[40]म पूर्वकम् ॥ ७ ॥"

१ श्रीमन्नारायण रामचन्द्र जी, २ श्री लक्ष्मी सीता जी, ३ श्री विष्वक सेन (सेनेश) जी, ४ शठकोप (कारिसूनु वा पराङ्कुश मुनि) जी, ५ श्रीनाथ मुनि जी, ६ श्री पुण्डरीकाक्ष जी, ७ श्री राममिश्र जी, ८ श्री १०८ यामुनाचार्य्य महाराज जी, ९ श्री पूर्णाचार्य्य (महापूर्ण स्वामी) जी, १० अनंत श्री रामानुजाचार्य्य (भाष्यकार) स्वामी जी, ११ श्रीकूरेश (कुरुतारक) जी, १२ श्री पराशरभट्ट जी, १३ श्री लोकाचार्य्य (लोकस्वामी) जी, १४ श्री १०८ देवाचार्य्य (देवाधिपाचार्य्य) स्वामी जी, १५ श्री शैलेशाचार्य्य स्वामी जी, १६ श्री वरवर मुनि जी, १७ पुरुषोत्तम (नरोत्तम)

शरणागत तथा कृपापात्र शिष्य थे। उन के चित्त का पूरा झुकाव सर्वदा धर्म्म की ओर रहता था। साधु महात्माओं की सेवा में उन्हों ने कलकत्ता और कानपुर के मध्य अनेक स्थानों में भ्रमण किया था। ज़िला छपरा चिरान्द के महाराज श्री जीवाराम जी (युगलप्रिया), ज़िला इलाहाबाद के श्रीगङ्गातटस्थ बदनपुर के महानुभाव श्रीरामदास जी महाराज तथा श्री अयोध्या जी प्रमोदबनकुटिया के महानुभाव श्री रामचरणदास जी उन पर बड़ी कृपा रखते थे।

कहते हैं कि एक बार श्री जनकनन्दिनी ने कृपापूर्वक

आचार्य्य स्वामी जी, १८ श्रीगङ्गाधर जी, १९ श्री सदाचार्य्य जी, २० श्री रामेश्वराचार्य्य जी, २१ श्री हारानन्द जी, २२ श्री देवानन्द जी, २३ श्रीश्यामानन्द जी, २४ श्री सुतानन्द जी, २५ श्रीचिदानन्द जी, २६ श्री पूर्णानन्द जी, २७ श्रीश्रियानन्द जी, २८ श्री १०८ हरियानन्द (प्रधानानन्द वा हर्षकानन्द वा सङ्घानन्द) स्वामी जी, २९ श्री १०८ राघवानन्द स्वामी जी, ३० अनन्त श्री भगवान रामानन्द (रामानन्दाचार्य्य स्वामी) जी, ३१ श्री १०८ सुखरानन्द स्वामी जी, ३२ श्रीबलियानन्द जी, ३३ श्रीखेड़रियास्वामी जी, ३४ श्री विहारी दास जी, ३५ श्रीरामदास जी, ३६ विनोदानन्द जी, ३७ श्री १०८ धरनीदास जी, ३८ श्री करुणानिधान जी, ३९ श्री केवलराम जी।

और ४० स्वामी श्री १०८ रामप्रसादीदास जी (परसा)

४१ श्रीनयनरामजी (फुचटी)	४१ श्रीरामसेवकदासजी (परसा)
४२ श्री १०८ रघुनाथदासजी (फुचटी)	४२ स्वामीश्री१०८ रामचरणदासजी (परसा)
आप के शिष्य श्री तपस्वीराम।	आप के शिष्य सत्यनायक।

स्वप्न में उन्हें दर्शन दे कर अपने चरणकमल का अँगूठा उन के मुंह में दिया था। जिसे बालक के समान प्रेमपूर्वक चाट २ कर यथार्थ चरणामृत पान से उन्हों ने अनिर्वचनीय आनन्द लाभ किया था।

मु० तपस्वीराम एक विद्यानुरागी पुरुष भी थे। आप फ़ारसी भाषा के बड़े पण्डित एवम् अन्यान्य भाषाओं के भी अच्छे ज्ञाता थे। उन्हों ने "वक़ायेदेहली (इतिहास)", "भक्तमाल की उर्दू टीका", "श्री पद्मावतसूची", "श्री अयोध्यामाहात्म्य", "कथामाला", "प्रेमगङ्गतरङ्ग" और "सीतारामचरणचिन्ह" आदि कई एक पुस्तकों की रचना की थी।

श्रीसीताजी के चरणचिन्ह की दो कवितायें यहां पर उद्धृत की जाती हैं। आशा है कि पाठकवृन्द इन चिन्हों से भूषित सकलअघनाशक श्रीमहारानी के चरणकमलों को निज हृदय में सप्रेम धारण करके भयानकभवताप से बचेंगे क्योंकि—

उल्लाला-धरत चरन तव मातु उर, करत पाप सब छार ये।
हरत ताप तिहु तुरतहीं, अजब अधूम अँगार ये॥

चरणचिन्ह की कविता।

"ध्यावहिं मुनिन्द्र सीयपदकंजचिन्हराज सन्तनसहायक सुमंगल सँदोहहीं। ऊर्द्धरेखा, स्वस्तिक, औ अष्टकोन, लक्ष्मि, हल, मूसल, औ सेस, सर, जनजिय जोहहीं॥ अम्बर, कमल, रथ, बज्र, जव, कल्पतरु, अंकुस, ध्वजा, मुकुट मुनिमन मोहहीं। चक्रजू, सिंहासन, औ यमदंड, चामर, त्यों छत्र, नर, जयमाल, वामपद सोहहीं॥

सरजू दक्षिनपद, गोपद, मही, कलस, औ पताक, जम्बुफल, अर्द्धचन्द्र राजहीं। संख, षटकोन, तीनकोन, मदा, जीव, बिन्दु,

सक्ति, सुधाकुण्ड, त्रिवली, सुध्यान काजहीं ॥ मीन, पूर्नचन्द्र, वीन, वंसी, औ धनुष, तून, हंस, चन्द्रिका विचित्र चौविस विराजहीं। ऐते चिन्ह जनककिसोरी पदपंकज के 'तपसी' मँगल मूल सब सुख साजहीं ॥"

"प्रेमगङ्गतरङ्ग" के विषय में भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र * ने लिखा है कि "ग्रंथ गद्य पद्य (ब्राजभाषा) में लिखा गया है। भक्तों का सर्वस्वही है। ग्रन्थकार की अनन्यभक्ति ग्रन्थ से दृष्टिगोचर होती है।"

हिन्दी के परम रसिक जी० ए० ग्रियर्सन साहिब महोदय भूतपूर्व कलक्टर ने हमारे चरित्रनायक के पास इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में लिखा था कि "मेरे पास इतनी पुस्तकें समालोचना के लिये आती हैं कि मैंने नियम कर लिया है कि किसी पुस्तक पर अपनी सम्मति न दूं, किन्तु आप के स्वर्गीय पिता (मु० तपस्वीराम) कृत 'प्रेमगङ्गतरङ्ग' के विषय में मैं इस नियम को भंग करता हूं। सरल और सुन्दर लेख-प्रणाली तथा इस की कतिपय मनोहर कविताओं के कारण, जो इस में जहां तहां समावेशित हुई हैं, जिस से यह पुस्तक रामकथा का मनोरंजक गुलदस्ता स्वरूप हो गई है, मैंने इस पुस्तक को बहुत आनन्दपूर्वक पाठ किया है †।

---

* हम ने इन की "हरिश्चन्द्र" नामक एक वृहत् जीवनी लिखी है जिसे म० कु० रामरणविजय सिंह "खड्गविलास" प्रेस की वर्त्तमान अध्यक्ष ने प्रकाशित किया है।

† "Owing to the number of books sent to me for criticism, I have been obliged to make a rule to refuse to give my opinion on any. I, however, make an exception in favour of "Premgung Trung" * of your father (M. Tapaswi Ram). It is a book I have read with

मुन्शी जी की एक स्फुट कविता भी हमें प्राप्त हुई है, उसे भी हम नीचे उद्धृत कर देते हैं।

"जय जयति जय सीतारमन, जय जय रमापति सुखसदन।
जय राम संसृतदुखसमन, भवभयहरन असरनसरन ॥१॥
जय अवधपति रघुकुलमनी, निज दासबंस त्रिभुवनधनी।
आनन्दकन्द कृपायतन, भवभयहरन असरनसरन ॥२॥
अव्यक्तमेकम् गोचरम्, विज्ञानघन धरनीधरम्।
मण्डलमहीनिश्चरदमन, भवभयहरन असरनसरन ॥३॥
लावण्यनिधि राजिवनयन, कलिमलदहन मंगलभवन।
'तपसी' सुखद करुना-अयन, भवभयहरन असरनसरन' ॥४॥

मु० तपस्वीराम का प्रथम विवाह कायस्थकुल के रीत्यानुसार बाल्यावस्थाही में परगना कसमर मौज़ा मानोपुर हुआ था और उस सहधार्म्मिणी से बाबू लालसाप्रसाद का जन्म हुआ जो अभी तक संसार में वर्तमान हैं और जिन के मातुल विरक्त होकर श्री अयोध्या महल्ला तुलसीवारी में निवास करने लगे और अब वैष्णवपण्डित विश्वेश्वरदास के नाम से वहां प्रसिद्ध हैं। प्रथम पत्नि का स्वर्गवास होने पर १८३७-३८ ई० में मुन्शी जी का दूसरा विवाह हुआ। इसी धन्या पुण्यवती स्त्री को हमारे चरित्रनायक हरिभक्त की माता कहलाने का गौरव तथा इन्हें निज गोद में खेलाने का सौभाग्य और सुख प्राप्त हुआ।

"पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपतिभक्त जासु सुत होई॥"

मु० तपस्वीराम को ५ सन्तति हुई—लालसाप्रसादजी, भगवानप्रसाद जी (इस ग्रंथ के नायक) और सीताराम-

---

pleasure both on account of simple and graceful style of its prose and on account of the many excellent poems, scattered through it forming a pleasing anthology of the story of Ram." G. A. Grierson.

चन्द्रप्रसाद जी—तीन पुत्र, और दो कन्या। मु० तपस्वी राम जी ईश्वराराधना में मग्न रहते हुये सकल सांसारिक सुख भोग कर ७० वर्ष की अवस्था में ईस्वी सन १८८५ के वैशाख कृष्णनवमी बुधवार को (श्रीरामनवमी और जानकी नवमी के मध्य) छपरा नगर के समीप गङ्गासरयू के संगम पर शरीर त्याग कर साकेतवासी हुए।

—*—

तृतीय परिच्छेद।

जन्म और बाल्यावस्था।

यह बात ऊपर कही जा चुकी है कि हमारे चरित्रनायक के पूज्य पितामह मुं० केवलकृष्ण जी नौकरी के कारण ज़िला इलाहाबाद के अन्तर्गत आलमगंज में रहते थे, अतएव उन के परिवार के लोग भी प्रायः वहीं रहा करते थे। इसी कारण हमारे चरित्रनायक श्रीसीतारामशरण भगवान-प्रासद जी का जन्म १८९७ सम्वत के श्रावण कृष्णनवमी को आलमगंज ही में हुआ। *

जन्मलग्नम्।

श्रावण कृष्ण नवमी सम्वत १८८७ (१८४० ईसवी)।
राशि का नाम अवधेश्वरीप्रसाद।

यद्यपि वसंत को ऋतुराज की पदवी दी गई है तथापि पावस ही ऐसी ऋतु है जिस में सब ऋतुओं का आनन्द मिलता है और यही ऋतु सब जीवधारियों एवम् वनस-पतियों का पोषक और आनन्दवर्द्धक है। पावस कवियों के चित्त को आह्लादित कर देता है। पावस के समागम ही ने जगद्विख्यात कविकुल-चूरामणि श्री कालिदास की लेखनी से "मेघदूत" जैसा काव्य प्रसव कराया। श्री सा-हित्याचार्य्य पं० अम्बिकादत्त व्यास ने स्वरचित "सुकवि-सतसई" में लिखा है "जीव जलद जल तरु सबै, पावस हीं उपजाहिं। यातें सर्वसरूप हरि, प्रगटे पावस माहिं॥" और वर्षाऋतु में श्रावण और भाद्रमासही प्रधान है। इसी से प्रातःस्मरणीय श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने एक स्थान में रामनाम की श्रावण और भाद्रमास से उपमा दी है "वर्षारितु रघुपतिभगति, तुलसी सालि सुदास। राम नाम बर बरन जुग, सावन भादो मास॥" इसी से भक्तव-त्सल भगवान ने निजवंश की सुकीर्तिलता लहालह एवम् हरा-भरा करनेवाले, नामकीर्त्तन के गरज सुनानेवाले, ईश्वरानुराग के जलबरसानेवाले और सर्वस्वरूपहरि की मनोहर मूर्ति निरख मयूर के सदृशनृत्य करनेवाले परमभक्त भगवानप्रसाद का श्रावण मासही में जन्म देना उत्तम समझा।

श्री भगवान के कृपापात्र एक हरिभक्त के अपने वंश में जन्म लेने का प्रभाव इन के घर के लोगों को तत्कालही देखने में आया। इन के जन्म के चार पांचही दिन बाद इन के पिता की नौकरी में वेतनवृद्धि हुई और पूर्वोक्त एम० आर्नल्ड नीलवाले साहिब ने नील के खेतों के पटाने के सम्बन्ध में किसी प्रशंसनीय प्रबन्ध के लिये इन के पितामह

को चांदी का एक कलमदान् और अर्गनबाजा पारितोषिक देकर इन्हें सम्मानित किया।

वंश की रीति के अनुसार पांचवें वर्ष में इन का मुण्डन तथा मक्तब परम पुनीत तीर्थराज में श्रीगङ्गा यमुना, और सरस्वती के संगम (त्रिवेणी) पर बड़ी धूमधाम से एकही साथ सम्पन्न हुआ। श्री पण्डित रामदीन जी तथा मौलवी मुजाहदीन ने क्रमानुसार श्री गणेशायनमः तथा मक्तब की विधि विधिपूर्वक कराई। वे दोनों महाशय इलाहाबादप्रान्त ही के रहनेवाले थे। सुनते हैं कि दोनों महाशय बड़े विद्वान। थे और दोनों पुरुषों का आचरण भी विमल एवम् अनुकरणीय था। जब ऐसे स्थान में विधिपूर्वक विद्यारम्भ कराया जाय तो चित्त की शुद्धता तथा ईश्वरभक्ति और विद्यानुराग में कैसे कसर पड़े? क्या वह स्थान जहां किसी समय झुंड के झुंड ऋषिगण सम्मिलित हो कर हरिभक्ति आदि विषयों की आलोचना किया करते थे, जहां आज भी कुम्भादि के समय बड़े२ महात्मा पधारकर दर्शनाभिलाषियों को आनन्द और धर्म्मजिज्ञासुओं को सन्तोष दिया करते है, जहां गङ्गा, यमुना एवम् सरस्वती एक संग विराजमान हैं और जो सब तीर्थों का राजा कहलाता है, अपना कुछ प्रभाव नहीं दिखलावेगा?—विशेषतः ऐसे व्यक्ति पर जिस के घरवाले सदा हरिभक्ति में निरत रहते आये हों।

जब इन की अवस्था ७ वर्ष की हुई, इन के पितामह मु० केवलकृष्ण जी इन्हें अपने साथ ले कर सन्त महात्माओं का दर्शन कराने लगे। आलमगंज के पास ही बदनपुर नामक गांव में वैष्णवों का एक प्रसिद्ध अखाड़ा था।

यहाँ गङ्गा तट पर एक मन्दिर में श्रीरामदास जी * एक नामी महात्मा रहते थे। इन के पितामह इन को बराबर वहाँ ले जाया करते थे। उक्त महात्मा तथा अन्यान्य स्थानीय साधुजन बालकभगवानप्रसाद पर बहुत स्नेह दरसाते थे। उन लोगों ने रामनामकीर्त्तन का बहुत सा भजन इन्हें कंठस्थ कराया था। बालकभगवानप्रसाद उसे मधुर स्वर से गान कर के लोगों को आनन्दित करते और स्वयम् भी अनिर्वचनीय सुख अनुभव करते थे।

श्री महात्मा रामदास जी की सेवा में बालकभगवान-प्रसाद जब जब जाते महात्मा जी इन के मुंह से निम्नलिखित चौपाई अवश्य कहवाते और तब इन्हें बहुत सी मिठाई देते थे।

" सीताराम मनोहर जोरी। कबहुं चितैहौ हमरी ओरी "।

बालकभगवानप्रसाद निज पितामह तथा पिता जी के साथ प्रतिमास के आरम्भ में पूर्वोक्त निलहे आर्नल्ड साहिब को सलाम करने भी जाया करते थे। साहिब बराबर ४), एक बक्स चाय और एक गुच्छा अंगूर का एक नीले वस्त्र में बांध कर इन्हें देते थे और ये साहिब को दोनों हाथों से सलाम करते थे। केवलदाहिने हाथ से सलाम करने के लिये कितना ही सिखाये जाने पर भी ये किसी को एक हाथ से सलाम नहीं करते थे, सब को दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करते थे। यह आदत इन की ७ वर्ष से बराबर बनी रही।

बालकाल में ये पत्थर के टुकड़ों को ले कर श्री शालि-

---

* आप का वृत्तान्त कविवर महावीरप्रसाद ने "भागवतचरित चन्द्रिका" नामक ग्रन्थ में वर्णन किया है।

ग्राम की भावना से उन की पूजा करते थे। पितामह के स्नेहपात्र होने के कारण इन के पूजापाठ में कोई रोक टोक नहीं करता था। अतएव आठ वर्ष की अवस्था तक इन का समय ऐसे ही पूजापाठ के खेलों में तथा सन्त महन्तों के दर्शनादि में व्यतीत हुआ। पढ़ने लिखने की बात कुछ भी नहीं हुई। इसी से इन के लघुभ्राता श्री सीतारामचन्द्र-प्रसाद जी ने एक स्थान में लिखा है कि "पितामह मु० केवलकृष्ण जी के विशेष लाड़प्यार में रह कर आठ वर्ष पर्य्यन्त इन ने पूजा छोड़ और कुछ नहीं सीखा"। परन्तु सच पूछिये तो इन के पितामह ने इन का लाड़प्यार करते हुये इन्हें बहुत कुछ सिखलाया। उन्हों ने इन्हें सज्जन सुशील बनाया, सदाचारी बनाया, इन के हृदय में प्रेम और भक्ति का बीज बोया। हां ऐसे दुर्बुद्धि मनुष्यों सा कार्य्य अवश्य नहीं किया जो बालकों को सुन्दर वस्त्राभूषणों से आभूषित कर गाड़ी पर बिठाये, उंगली धराये नाच तमाशा दिखलाने को ले जाते हैं और उन को निकट बिठा कर वाराङ्गनाओं से हंसी मज़ाक़ उड़ाते हैं, वरन बच्चों को भी हंसी करने को सिखाते हैं, किन्तु जो कोई नौकर चाकर वा घर ही का कोई व्यक्ति उन्हें देवदर्शन को वा साधु महात्माओं के पास ले जाय तो उस पर आगभभूका होने लगते हैं और ऐसा कहते तनिक भी नहीं लजाते कि "अभी से साधु फ़क़ीर का दर्शन और पूजापाठ होने लगा, पढ़ना लिखना चूल्हे भाड़ में गया, आगे क्या होगा?" आगे क्या होगा सो तो हम नहीं कह सकते और न बालकों का लिखना पढ़ना ही चूल्हा भाड़ में झोंकना चाहते, पर इतना तो अवश्य कहेंगे कि आप की राह पर चलने से दुराचारी और

अधर्म्मी तो निश्चय होना पड़ेगा और हो सकता है कि जह-न्नुम भी जाना पड़े।

बाल्यावस्था में मनुष्य का चित्त सरल, कोमल और विशुद्ध उज्ज्वल पट के समान होता है। उसे जिधर झुकाइये विना परिश्रम झुक जाता है। उस समय के संगजनित गुणावगुण की छाया उस पर ऐसी अंकित हो जाती है कि मिटाये भी नहीं मिटती। यदि बाल्यावस्था ही में धर्म्मशिक्षा तथा अन्यान्य उपकारी सुशिक्षा दी जाय तो आगे रोना ही क्यों पड़े? घर में कलह ही क्यों हो? वैर की वृद्धि ही क्यों हो? स्वधर्म्म, स्वदेश तथा स्वजाति अनुराग ही क्यों लोप होने लगे? अत-एव हमारी समझ में इन के धर्म्मपरायण पितामह जी ने बहुत ही उचित काम किया कि ऐसा लाड़प्यार नहीं किया जिस से ये आगे भ्रष्टाचार हो जायं। बरन लाड़प्यार के साथ २ इन्हें ऐसा बनाया कि औरों के उपदेशार्थ और हितार्थ आज इन की जीवनी लिखने की बारी आई।

बाबू सीतारामचन्द्रप्रसाद जी ने भी अपने पितामह पर आक्षेप के अभिप्राय से पूर्वोक्त बात नहीं लिखी है। धार्म्मिक पुरुषों के वंशज, एक परम हरिभक्त के भ्राता एवम् स्वयम् हरिभक्त और विद्वान् हो कर वे क्यों ऐसा करेंगे? जो घटना हुई थी उसी का उन्हों ने यथार्थ उल्लेख किया है। हम ने भी इस पर टिप्पणी इस लिये लगाई है कि लोग इस का कुछ और ही भाव न निकाल बैठे और किसी पर हास्योत्पादक आक्षेप न करें।

परन्तु इन के पितामह जी को इन की विद्याशिक्षा की ओर सर्वथा ध्यान न हो यह बात भी नहीं थी। यदि यह बात होती तो मक्तब और विद्यारम्भ की विधि ही क्यों

कराई जाती। हां! आठ वर्ष तक नियमपूर्वक शिक्षा नहीं हुई, यह बात निस्सन्देह स्पष्ट है।

चतुर्थ परिच्छेद।

शिक्षा।

आठ वर्ष की अवस्था के अनन्तर बालकभगवानप्रसाद अपने मातापिता के साथ निज पैतृकग्राम मोबारकपुर में आये। वहां आने पर इन की नियमपूर्वक शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। बिहारप्रान्त में उस समय अङ्गरेज़ी का इतना प्रचार नहीं था। लोग फ़ारसी अरबी भाषा के प्रेमी थे। कायस्थ लोग तो फ़ारसी पढ़ना मानो अपना धर्म्म ही समझते थे, तभी तो "श्रीगणेशायनमः" के साथ २, बरन उस से पहले ही, कायस्थबालकों का मक्तब और "बिस्मिल्लाह" कराया जाता था। आज भी मक्तब कराने की चाल कहीं २ प्राचीन कायस्थ-स्थानों में प्रचलित है। तत्कालीन प्रथा के अनुसार बालकभगवानप्रसाद आठ वर्ष की अवस्था में मोबारकपुरनिकटवर्ती ओल्हनपुरनिवासी मौलवी अशरफ़-अली से फ़ारसी पढ़ने के लिये पठाये गये। मौलवी साहिब इन के ख़ान्दानी उस्ताद थे। उन से कुछ पढ़ लेना और उन की दुआ का भागी होना शुभ और कल्याणकारक समझा गया। सुनते हैं कि मौलवी साहिब फ़ारसीभाषा के अच्छे ज्ञाता और हिक्मत (चिकित्साशास्त्र) में बड़े निपुण थे।

ग्यारह वर्ष की अवस्था में ये मोबारकपुर के मिडिल वर्नेक्युलर स्कूल में बैठाये गये। मौलवी जहांगीरबख़्श शाहपुरी उस स्कूल के प्रधानशिक्षक और बाबू विनायक-

प्रसाद * स्कूलसर्वेयर थे। बालकभगवानप्रसाद मौलवी साहिब से फ़ारसी और बाबू साहिब से हिन्दी उर्दू पढ़ने लगे।

बहुत से पिता अपने पुत्र को स्कूल वा पाठशाला में दे कर आप निश्चिन्त हो जाते हैं। स्वयम् पढ़े लिखे होने पर भी, भूल कर भी यह नहीं देखते और पूछते कि उन का लड़का क्या पढ़ता है, कैसा आचार व्यवहार सीखता है और कैसी उन्नति करता है? हां! स्कूल में भेजने के साथ ही उस के कोट बुट की त्यारी अवश्य कर देते हैं और हो सका तो एक नौकर भी छाता और किताब लिये उस के साथ लगा देते हैं, मानो स्वयम् किताब ले जाना पाप हो अथवा उस से उन के वंशगौरव में हानि होती हो। परन्तु इस का परिणाम प्रायः शोचनीय ही होता है। हमारे चरित्रनायक के पिता ऐसे नहीं देखे जाते। वे घर पर भी इन की शिक्षा की ओर ध्यान रखते थे और इन्हें स्वयम् भी पढ़ाया करते थे। यह भार उन्हों ने किसी ख़ानगी मास्टर पर नहीं दिया था। वरन, जैसा कि बाबू सीतारामचन्द्रप्रसाद जी के लेख से विदित होता है, इन की शिक्षा के विचार तथा ज़मींदारी के कारबार के उलझावे से ही इन के पिता बराबर घर ही रह गये। उन्हों ने फिर नौकरी की ओर ध्यान नहीं दिया।

मोबारकपुर में पण्डित प्रह्लाददत्त पाण्डेय और मु०शिवचरणभगत दो रामानन्दीय सम्प्रदाय के वैष्णव बड़े विद्वान्, धार्म्मिक और सदाचारी थे। पहिले तो एक प्रधानपण्डित ब्राह्मण थे और दूसरे जाति के कोइरी थे, किन्तु फ़ारसी में

* ये पीछे डिपुटी इन्सपेक्टर स्कूल बनाये गये।

उन की ऐसी व्युत्पत्ति थी कि लोग उन्हें मुन्शी कहा करते थे। मु० तुलसीराम तथा मु० तपस्वीराम उन लोगों का बहुत सम्मान करते, उन से प्रायः मिलते और जब कभी उन लोगों के पास जाते तो हमारे चरित्रनायक को भी बराबर अपने साथ ले जाया करते थे। पूर्वोक्त चारों महाशय मोबारकशाह की क़ब्र की बड़ी इज्ज़त करते और प्रति वर्ष दो एक बार उस के दर्शन को भी जाया करते थे।

मोबारकपुर में वास करते समय हमारे चरित्रनायक रामशरणसाहु रौनियार से एक छटंकी पत्थर लेकर और उसे अपना ठाकुर जी मान कर उस की पूजा करते थे। इन के पिताजी ने उक्त ठाकुर जी के योग्य एक छोटी सी चान्दनी और हाथी का खिलौनाआदि भी प्रस्तुत कर दिया था और इन की माताजी भोगार्थ समयानुसार भिन्न २ खाद्य पदार्थ भी प्रस्तुत कर देती थीं। इन के चचा बख़्शीराम जी ने जिन के घर में ये अपने ठाकुर जी की पूजा किया करते थे, इन्हें श्री गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण की हस्तलिखित एक प्रति दे कर इन्हें पुस्तक पाठ करना भी कुछ सिखा दिया था और पूजनान्तर ये उस पुस्तक का नित्य सप्रेम पाठ करते और प्रसाद पाते थे।

मोबारकपुर में जब कभी रामलीला होती थी, तो बालक भगवानप्रसाद श्री रघुनाथ जी की मूर्ति के पास खड़े होकर बड़े स्नेह से चमर डुलाया करते और प्रेमपूर्ण नेत्रों से उन की छवि अवलोकन किया करते थे।

१८५५ ई० में इन के पितामह के अज्ञानुसार इन के पिता और चचा में खानपान और कारबार की जुदागी हुई।

मोबारकपुर पढ़ने के समय ईश्वरप्रेम तथा ईश्वरकृपा

के विषय में ये अपने शिक्षकों से प्रायः सप्रीति प्रश्न किया करते थे और वे लोग भी इन की रुचि इधर देख कर इस सम्बन्ध में इन से सानन्द वार्तालाप किया करते थे, यहां तक कि इस कथोपकथन में कभी २ पठनपाठन भी लोग भूल जाया करते थे। १७५५-५६ ई० में एक बार हरिकृपा तथा प्रेम विषयक प्रश्न के उत्तर में मौलवी जहांगीरबख़्श ने इन्हें महम्मदजायसीकृत हिन्दी "पद्मावत" * तथा "तज़किर-तुलऔलिया" एक फ़ारसी की पुस्तक पढ़ कर सुनायी और "नजमुलहुदा" नामक ग्रंथ पढ़ने की इन्हें सम्मति दी। परन्तु उस्ताद और शागिर्द में जुदाई होने के पूर्व वह ग्रन्थ इन्हें प्राप्त नहीं हुआ। १८५७—५८ ई० में पूर्वोक्त बाबू विनायकप्रसाद ने पटने से खोज कर वह ग्रन्थ इन्हें दिया

---

* अलाउद्दीन बादशाह ने चित्तौड़ के राजा रत्नसेन को धोखा दे कर बन्दी किया था और आज्ञा की थी कि जब तक वे निज परम सुन्दरी स्त्री पद्मिनी (पद्मावती) को नहीं बोला देंगे, मुक्त न किये जायंगे। रानी ने यह समाचार पा कर बादशाह को कहला भेजा कि "मैं स्वयम् आती हूं"। और अपने साथ सहेलियों के बहाने सात सौ डोलियों में हथियारबन्द सिपाहियों को वह इस ढंग से छिपा लाई कि आप भी सलामती से निकल गई और पति को भी बन्दीखाने से निकाल ले गई। चित्तौड़ का दुर्ग पुनः विजय होने पर वह अपनी सखियों के समेत चिता पर बैठ कर भस्म हो गई। बादशाह को ख़ाक ही ख़ाक हाथ लगी। सती का सतीत्व नष्ट नहीं कर सके। इसी कहानी को महम्मदजायसी ने शेरशाह के राजत्वकाल में काव्यबद्ध किया है। कवि ने भीमसेन के बदले रत्नसेन लिखा है। यह भूल है। जायसी का जन्म लोग सं० १५८० में बताते हैं।

और उसे तथा रामायण और प्रेमसागर इन्हें सम्पूर्ण पढ़ कर सुनाया और समझाया एवम् इन के चित्त में ईश्वरप्रेम, निज निग्रह और तवक्कुल (हरिआश्रयता) की पुष्टि की। तभी से ये सदैव अपने मन को सन्तोष, निजनिग्रह और हरिभक्ति की शिक्षा देते रहे हैं एवम् स्वरचित पुस्तकों में इन्हों ने औरों को भी इन विषयों का सुन्दर उपदेश दिया है। छपरा-स्कूल में इन्हें शिक्षकों के साथ धर्म्मचर्चा का सुअवसर नहीं मिला।

हम को एक नोट से ज्ञात हुआ है कि इन के पिता जी पूजापाठ तथा धर्म्मसम्बन्धी बातों में इन्हें सहायता देते हुये भी इन्हें सांसारिक बड़ा आदमी बनाना चाहते थे और इन के चचा मु० तुलसी राम जी इन्हें विशुद्ध ईश्वरप्रेमी बनाने की चेष्टा करते थे। धर्म्मज्ञ, धर्म्मपरायण पिता इन्हें संसार में क्यों जकड़ना चाहते थे यह शंका स्वाभाविक रीति से उपस्थित हो सकती है। महात्माओं की बात महात्मा ही जाने। पर हमारा अनुमान यह है कि इन के पिता जी का कदाचित् यह विचार होगा कि यदि गृहस्थाश्रम में परिपक्व हो कर ये विरागी बनें तो अधिक लाभ होगा क्योंकि कुछ काल संसारी रह कर विषयवासना के गुण दोष का यथार्थ अनुभव होने के अनन्तर जो विराग होगा वह अचल तथा चिरस्थायी होगा; और इस के सिवाय संसार में रहते हुये भी तो आदमी ईश्वर में मन लगा सकता है और उस के प्रेम में रंगा सकता है। श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है :—

"तन से काम करो विधि नाना। मन राखो जहँ कृपानिधाना॥

बस इस से बढ़ कर सहज और सुलभ क्या हो सकता है यदि मनुष्य इस उपदेश का सचमुच अवलम्बन करे।

इन के पिता जी की अभिलाषा पूरी हुई। ये गृहस्थाश्रम में एक ऊंचपदस्थ व्यक्ति हो कर भी सदा विरक्त ही के समान रहे और ईश्वर के चरणकमलों में इन्हें नित्य नवनेह होता गया। इन के चचा की भी मनस्कामना सुफल हुई। आज ये संसार से एकदम मुहं मोड़ कर परमभक्त और महात्मा हो गये जो बात पाठकों को आगे स्पष्ट विदित होगी।

अब इन की शिक्षा की शेष कथा श्रवण कीजिये। आप मिडिलपरीक्षा में उत्तीर्ण हो कर और ४ वर्ष के लिये ४) मासिकवृत्ति पा कर १८५९ ई० में छपरा ज़िला स्कूल में भरती हुये।

बचपन ही से शान्तस्वभावी महात्माओं की सङ्गति और दर्शन से इन का स्वभाव भी बड़ा ही शान्त हो गया था। स्कूल में ये बहुत गम्भीरता और शान्तभाव से रहते थे। दुष्ट छात्रों के समान न परस्पर लड़ाई झगड़ा करते और न शिक्षकों के अपमान ही का कोई काम करते। अतएव शिक्षकगण और इन के संगी साथी सभी इन से सर्वदा प्रसन्न रहते थे। इस के सिवाय अपना पाठ भी मन दे कर पढ़ते थे जिस से अच्छे लड़कों में इन की गणना थी।

छपरा में ये काइटोलीसलेमपुर महल्ला में बिशुनपुर ज़िलासारननिवासी मु०जवाहिरपाण्डेय * श्रीवास्तव कायस्थ

---

* इन के पुत्र बाबू नन्दकुमार पाण्डेय नीचे के क्लास में हमारे चरित्रनायक के सहपाठी थे। मु० जवाहिरपाण्डेय तथा बाबू नन्दकुमार जी तो अब इस संसार में नहीं हैं, किन्तु बाबू नन्दकुमर के तीन पुत्र वर्तमान हैं जिन में से ज्येष्ठ पुत्र बाबू लीलाधरप्रसाद पाण्डेय मोख़्तारकारी करते हैं। जिस मकान में ग्रन्थनायक रहते थे वह अभी तक एक पाकड़ के पेड़ के पास वर्तमान

के मकान में रहते थे। वहां से स्कूल एक मील के फ़ासिले पर था स्कूल जाने की दो राहें थीं। एक राह से जाने में

है। उसी मकान में "श्रीहरिकीर्तनसमाज छपरा" (१) का अधिवेशनादि हुआ करता है।

(१) यह समाज सं० १९६१ (१९०४ ई०) के ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी शनिवार को श्रीबाबू उदयप्रकाश शिरिश्तेदार कलक्टरी के उद्योग से संस्थापित हुआ और उसी दिन पहिलीबार विवाहलीला हुई। तब से प्रति रविवार वा शनिवार को श्री हनुमान जी का पूजन, रामचरित मानस का पाठ और श्री हरिनामकीर्तन हुआ करता है। शुभ अवसरों पर श्री सीताराम जी, श्रीराधाकृष्ण जी तथा श्रीगौरीशंकर जी की झांकी का भी आनन्द होता है और लीलाएं भी होती हैं। इस के सभापति वही बाबू उदयप्रकाश हैं और इस समय इस के सभासदों की संख्या १२० है जिस में डिपुटीकलक्टर मुन्सिफ़, वकील, मोख़्तार, बड़े २ ज़मींदार, अमले तथा अन्यान्य सुशिक्षित जन सबही सम्मिलित हैं। श्रीबाबू उदयकप्राश, श्री बाबू रघुनन्दनप्रसाद, श्रीपण्डित रुद्रप्रसाद त्रिपाठी, श्री बाबू लीलाधर पाण्डेय, श्री बाबू दीपनरायण सिंह, श्री बाबू विष्णुदेवनारायण, श्रीबाबू विष्णुवल्लभाप्रसाद, श्री बाबू मटुकधारी लाल श्रीबाबू महादेवप्रसाद तथा श्री विद्याप्रसाद प्रभृति इस के मुख्य सभासद हैं जिन की निपुणता एवम् कार्य्यदक्षता से समाज ने ऐसा गौरव प्राप्त किया है।

हमारे चरित्रनायक की रुचि के अनुकूल सं० १९६४ के पौष कृष्णपक्ष में समाज ने श्री अवध में पांच दिनों तक श्री गिरिजातप, श्रीनारदमोह, श्री मनुसतरूपा का तप, श्रीरामजन्म तथा फुलवारीलीला दिखला कर श्री अवधवासियों को बड़ाही आनन्द दिया। सन्त महात्मागण बड़े प्रसन्न हुये और समाज ने महत् यशलाभ किया।

विलम्ब होता था और दूसरी राह * से आदमी शीघ्र पहुंचता था, किन्तु इस राह की ओर बहुत आबादी नहीं थी और इस राह से आने जाने में चोर चाई का भी बहुत भय रहा करता था।

ये पूर्वोक्त दूसरी राह से स्कूल आया जाया करते थे क्योंकि इधर अल्प जनसंरुग होने के कारण इन्हें यह सुविधा होती थी कि ये चुपचाप मानसिक भजन करते जाते थे। बालकाल ही से सत्संग के कारण इन के हृदय में ईश्वरानुराग पूर्णरूप से विकशित हो गया था, अतएव सावकाश होने ही से ये उच्च स्वर से वा मनही मन छप्पैरामायण आदि पाठ किया करते थे। इसी से ये डेरे से स्कूल जाते समय नित्य राह ही में छप्पैरामायण पाठ कर लिया करते थे। जो लोग ईश्वरभजन करने के लिये समय के अभाव का बहाना किया करते हैं क्या वे लोग छात्रभगवान-प्रसाद के आचरण से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे? चारपाई पर पड़े २ खर्राटा मारने का, कचहरी के कामकाज तथा अन्यान्य धन्धों से अवकाश मिलने पर बोतल ढालने का और ताश गंजीफ़ा खेलने का, स्कूल से छुट्टी पाने पर धूमधड़ाका करने का, कुछ न हो तो तवा दमकाने और चुरुट की धुआं उड़ाने का समय मिलता है, पर महा शोक का विषय है कि अधिकांश लोगों को २४ घंटे में २४ सेकेंड भी प्रेमपूर्वक की बात दूर रहे "अनख आलस हूं" ईश्वर के नाम लेने

---

* यह राह "इलियट सड़क" के नाम से प्रसिद्ध है। कारण यह कि इस सड़क के पास एक जगह इलियट साहब के नाम का एक बड़ा तालाब है।

का समय नहीं मिलता। तब कहिये चहुं दिसि मंगल के बदले अमंगलही अमंगल क्यों न हुआ करै ?

छात्रभगवानप्रसाद मन लगाकर विद्याध्ययन भी किया करते थे और उठते बैठते चलते फिरते भगवान का भजन भी कर लिया करते थे। ईश्वर के जनों का सदा यही काम भी है।

" ऊठत बैठत सोवत नाम। कह नानक जन के सदकाम।"

और इसी अनुराग के कारण श्री भक्तवत्सलभगवान भी इन पर आदिही से कृपादृष्टि रखने लगे। इस का दो एक उदाहरण देखिये। इन के बड़े भाई बाबू लालसाप्रसाद जी के श्वशुर ज़िला शाहाबाद कल्यानपुरनिवासी मुन्शी रामानुग्रह सिंह मोख़्तार छपरा के दहिआवां महल्ला में सपरिवार रहते थे। इन के पिता श्री तपस्वीराम जी ने एक बार " पियरी " का रसम कपड़ा मिठाई आदि दे कर इन्हें बाल्यावस्था में मोबारकपुर से छपरा भेजा। शहर में आ कर एक्का से उन कपड़ों की गठरी कहीं गिर गई और किसी को उस की कुछ सुधि भी नहीं हुई। डेरे से कुछ दूर उधर ही पहुंचने पर जो देखा जाय तो गठरी नदारद। बहुत ढूंढ़े जाने पर भी गठरी नहीं मिलने से ये बालस्वभाववश रोने लगे। डेरे के पास आ कर एक्का खड़ा होने पर ये उसी पर रोते बैठे रहे, उतरे नहीं। मोख़्तार साहिब ने स्नेह और आग्रह पूर्वक इन्हें उतारा। एक्कावान और छोटा नोकर रोने का कारण कह ही रहे थे कि इतने में मोख़्तार साहिब का एक नौकर एक गठरी लिये आया और सामने रख कर बोला कि " यही तो नहीं है, मैंने अभी इसे सड़क पर पाई है "। रामकृपा से गठरी वही थी। ये कुछ दिन वहीं आनन्द से रहे। फिर विदा हो कर पीले चपकन, धोती

चादर इत्यादि पहिन कर और पूर्व घटना के लिये ईश्वर का धन्यवाद करते छपरा से घर चले। पहाड़पुर में एक दुखी बालक को इन्हों ने सब वस्त्र उतार कर दे दिया। एक्का पर अकेला रहने से अपने भाव से (अर्थात् रक्षक रक्ष्य भाव से, जो इन्हें १८६५ ई० तक बिना किसी के उपदेश के अपने मनही से रहा), भगवतस्मरण भले प्रकार से करते रहे। घर पहुंच कर निश्चिन्त होने पर, पूछने पर नौकर ने इन के पिता से कहा कि " बबुआ से सर्कार पूछिए कि जो कपड़े पाये थे सो क्या किये।" इन्हों ने कहा कि "रक्खा है, भोर को देख लीजियेगा।" भोर को श्री सीताराम कृपा से मोख़्तार साहिब के दिये कपड़ों से कहीं अधिक सुन्दर कपड़े सिये सियाये, रँगे रँगाए और गोटे आदि टँके गठरी से निकले। भक्तवत्सल जनलाजरक्षक श्री भगवान की जय।

छपरा स्कूल में पढ़ने के समय एक दिन की बात है कि इन के मास्टर क्लास में भूगोल पढ़ा रहे थे और छात्रों से भूगोल सम्बन्धी प्रश्न कर रहे थे। उस समय ये मन ही मन छप्पै रामायण का पाठ करते थे। मास्टर ने इन से भी एक प्रश्न किया। ये उत्तर नहीं दे सके और इन्हें स्थानच्युत होना पड़ा जिस के लिये इन के शिक्षक ने इन्हें बहुत धिक्कारा। ये क्लास के अच्छे लड़कों में थे और असावधानी के कारण इन का स्थानच्युत होना मास्टर को बहुत बुरा लगा। कुछ देर के बाद मास्टर महाशय ने डपट कर इन से दूसरा प्रश्न किया। उस समय ये मन ही मन यह पद पढ़ रहे थे "श्रीपति रघुपति अवधपति, राख लेहु शरण आपना। कृपा करहु श्रीरामचन्द्र मम हरहु शोक संतापना।" मास्टर के डपट से नइके मुंह से ज़ोर से " अवध " शब्द निकल आया और

संयोगवश वही उस प्रश्न का उत्तर भी था। मास्टर साहिब प्रसन्न भी हुये और कुछ चकित भी हुये। प्रसन्न यथार्थ उत्तर पा कर हुये और चकित इस कारण से हुए कि असावधान रहने पर भी इन के मुंह से यथार्थ उत्तर कैसे निकल पड़ा। छात्रभगवानप्रसाद उन की प्रसन्नता और उन के आश्चर्य्य का यथार्थ कारण कुछ भी नहीं जान सके। परन्तु इन के सहपाठियों ने पीछे इन से कहा कि "मास्टर साहिब ने पूछा था कि रघुवंशियों की कौन सी राजधानी थी और उसी समय आप के मुंह से 'अवध' शब्द ज़ोर से निकल पड़ा था जो कि उस प्रश्न का उत्तर था"।

इस घटना की आलोचना में यह प्रश्न उठ सकता है कि छात्रों के लिये, किसी कारण से क्यों न हो, पढ़ने के समय ऐसी असावधानी उचित है वा नहीं? असावधानी तो किसी को कोई काम करने के समय उचित नहीं और छात्र-भगवानप्रसाद सचमुच विद्याभ्यास में असावधान रहते भी नहीं थे। यदि ऐसा होता तो अपने क्लास में अच्छे लड़कों में इन की गणना नहीं होती। परन्तु इस समय ईश्वर को अपनी कृपा का इन्हें तथा अन्यान्य लोगों को कुछ परिचय देने एवम् इन की निज कर्तव्य में भावी असावधानी निवारण ही की इच्छा थी, इसी से निस्सन्देह ऐसी घटना हुई। पाठ समय असावधानी के लिये मास्टर से इन्हें तिरस्कृत भी कराया और साथ ही साथ निज कृपाप्रभाव से इन के मान की रक्षा कर इन्हें बड़ाई का पात्र भी बनाया जिस से मास्टर साहिब की भी प्रसन्नता हुई।

इस घटना से इन के हृदय में ईश्वरप्रेम और भी बढ़ा और स्कूल में फिर कभी इन की असावधानी की बात भी नहीं सुनी गई।

१८६३ ई० में ये ऐंट्रेंस क्लास में पहुंचे। उस कक्षा में पढ़ने के समय इन्हों ने "तन मन की स्वच्छता" नाम्नी एक पुस्तिका हिन्दीभाषा में निर्माण की और बिहार के तत्कालीन इन्सपेक्टर औफ़ स्कूल डाक्टर फ़ैलन साहिब के हाथ में उसे अर्पण किया। साहिब बहादुर इन से बहुत प्रसन्न हुये और उन्हों ने वर्न्याकुलर स्कूलों की सब इन्सपेक्टरी का इन्हें परवाना दिया।

बाबू सीतारामचन्द्रप्रसाद जी लिखते हैं कि "यद्यपि मौलाना जमीलअहमद साहिब लखनवी ने जिन से ये 'अख़लाक़ेजलाली' और 'अख़लाक़ेनासरी' पढ़ते थे, बहुतही रोका कि इतनी शीघ्रता के साथ नौकरी के लोभ में नहीं पड़ना चाहिये, तथापि हित की बात इन के चित्त पर नहीं चढ़ी और हरीच्छा से स्कूलों की सब इन्सपेक्टरी इन ने स्वीकार कर ली।" धर्म्मपरायण व्यक्ति के लिये हरीच्छा ही सब से बढ़ कर हितकर बात थी। जो हो, अब इन के विद्याभ्यास के दिन समाप्त हुये। इन्हों ने स्कूल से विदाई ली, पर शिक्षा विभाग से सम्बन्ध नहीं छुटा। २३ वर्ष की अवस्था में सन १८६३ ई० की १४ वीं अगस्त को छात्र-भगवानप्रसाद ३०) मासिक वेतन पर पटना में सब इन्सपेक्टर स्कूल नियत होकर छात्रों और शिक्षकों के काम का निरीक्षण करने लगे।

जब बालकभगवानप्रसाद छपरा ज़िला स्कूल में एक नीचे की कक्षा में पढ़ते थे वहां के हेड् मास्टर (प्रधान शिक्षक) विलियम हैन्वे (William Hanvey) ने इन की चमत्कृत् बुद्धि देख कर अपने एक छात्र स्वर्गीय बाबू तुलसीप्रसाद * से जो तत्काल ही ऐन्ट्रेंस परीक्षा में

* ये अदालत में एकवंटी, सुतरञ्जिनी आदि अनेक काम कर के पीछे सिरिश्तेदार हो गये थे।

उत्तीर्ण हुये थे इन्हें घर पर पढ़ाने की सम्मति दी और उन्हों ने सहर्ष स्वीकार किया। बालकभगवानप्रसाद नित्य उन के घर मौना महल्ला में जाया करते और वे स्नेहपूर्वक इन्हें पढ़ाया करते थे।

बाबू तुलसीप्रसाद के पिता जी पुरानी चाल के पक्के हिन्दू और वर्णाश्रम धर्म्म के पालक थे। उन की यह इच्छा हुई कि उन के पुत्र का विद्यार्थी उन के पुत्र के समान ही सुशील और धार्म्मिक हो क्योंकि उन के सदोपदेशों से उन के पुत्र के हृदय में धर्म्मप्रेम प्रबल हो गया था। अतएव वे भी समयानुसार इन्हें धार्म्मिक विषयों का उपदेश दिया करते थे। अन्य बातों के सिवाय इन्हें यह भी जताते थे कि "देखो! श्री राम के बदले गौड, खुदा, अल्लाह ऐसा शब्द कभी नहीं कहना; यद्यपि सब एक ही हैं तथापि तुम हिन्दु-सन्तान हो, तुम्हारे मुहं से श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम ही उच्चारण करना सोहेगा।" ऐसे उपदेशों के लिये हमारे चरित्र-नायक उन के अभी तक बहुत बाधित हैं।

अपने सहपाठियों † में हमारे चरित्रनायक को बाबू रघुनाथसहाय से बहुत आत्मीयत्व था। ये दोनों मित्र प्रायः एक दूसरे के घर आया जाया करते थे। बाबू रघुनाथसहाय के पिता मुन्शी हीरालाल जो अपने समय के एक प्रसिद्ध वकील और पक्के हिन्दू थे, इन्हे बहुत प्यार करते थे।

---

† इन के सहपाठी आदि का संक्षिप्त वृत्तान्त अन्यत्र दिया जायगा।

पंचम परिच्छेद ।

विवाह ।

पाठकवृन्द मन में सोचते होंगे कि हम ने अपने चरित्र-नायक की शिक्षा की कथा सुनाई और इन के सब इन्सपेक्टर स्कूल नियत होने का हाल कहा किन्तु इन के विवाह की बात अब तक क्यों न सुनाई? क्या इन का विवाह अभी तक नहीं हुआ? वा इन का यह विचार था कि अच्छी नौकरी पाने पर पश्चिमीय प्रथा के अनुसार अपने पसन्द से विवाह किया जायगा? नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं थी। उस समय जैसे श्रेष्ठ कुलों में विवाह होता था उसी प्रकार १८५७ ई० में मु० ठाकुरप्रसाद की सौभाग्यवती कन्या से इन का विवाह हुआ।

मुन्शी ठाकुरप्रसाद ज़िला छपरा कसमर परगना के दिघवारासमीपवर्ती रेपुरा गांव के रहनेवाले कलकत्ता हाई-कोर्ट के मुख़तार थे। आप के वंश में इस समय मुन्शी गदाधरप्रसाद और मु० भगवानसहाय वर्तमान हैं।

परम हरिभक्त एवम् ईश्वरस्वरूप पति की सेवा का सुखानन्द लाभ करती हुई चिरकाल जीवित रह कर इन की सौभाग्यवती सहधर्म्मिणी ने १८९० ई० के वैशाख की पूर्णिमा को श्री गङ्गा जी के तट पर अपने मयके में शरीर त्याग किया। कोई सन्तति नहीं होने पर भी इन्हों ने अपना दूसरा विवाह नहीं किया। इन्हों ने सोचा होगा कि जब ईश्वरेच्छा से एक बन्धन आप ही आप टूट गया तो सन्ततिलाभ की आशा से दूसरे बन्धन में पुनः पैर डालना बुद्धिमानी का काम नहीं। यदि ईश्वर को सन्तान-

मुख का आनन्द देना होता तो क्या स्त्री के ३२ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहने पर कोई सन्तति नहीं होती ? यह तो विषयी अविवेकी पुरुषों का काम है कि वयोगत हो जाने पर भी केवल सन्तति नहीं रहने का बहाना ले कर दो, तीन, चार विवाह करते रहें और विषयभोग से सन्तुष्ट न हों। ऐसे जनों से बढ़ कर इन की गति और भी शोचनीय है जो ईश्वरकृपा से सन्तान वर्तमान रहने पर भी एवम् " मूये सफ़ेद अज़ अजल् आरद प्याम। पुश्त ख़म अज़ मर्ग रसानद सलाम " ऐसी अवस्था होने पर भी नवीन पत्नी का पाणिग्रहण करने में तनिक भी नहीं लजाते। मृत्यु के दिवस निकट पहुंचने पर भी ईश्वराराधना में मन न देकर कवि की इस उक्ति को सार्थक करते हैं—

" गिर दन्त गयो तन कम्प भयो सिर केस सुसेतसरोजहि की। डगदेत डगावत हैं तन को छवि है मनमाहिं उरोजहि की॥ सरदार * न आदर भूप करैं हरैं मान महामनमोजहि की। सियाराम न भाषत हैं अजहूं औ इनोज है मौज मनोजहि की॥ "

" हँसि बातें करैं तो वहि ढँग की त्यों कथाएं करैं वहि चोजहि की। तिरवेनी में जाय परैं जो कहूं तहां बेनी बखा-

---

* श्री महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह बहादुर काशीनरेश की सभा के कवि थे। इधर के कवियों में ये एक बड़े प्रसिद्ध कवि हुए हैं। इन की रचनाओं में " हनुमत्भूषण ", " तुलसीभूषण ", " मानसभूषण ", " कवि प्रिया का तिलक ", " रसिक प्रिया की टीका ", " शृंगारसंग्रह ", " श्रीसूरदासजी के कूटों की टीका ", " साहित्यसरसी " और " सतसई का तिलक " ये सब ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

नत ओजहि की ॥ लखि मूरति संभु बिरागिहुं की उपमा भक्ति देत उरोजहि की । कवि सेवक * बूढ़े भये तो कहा जो इनोज है मौज मनोजहि की । ”

इन्हों ने यह भी विचारा होगा कि मनुष्यशरीर न सन्तति उपार्जन ही के लिये मिलता है और न विषयभोग ही के लिये । ये बातें तो सब योनियों में जन्म लेने से होती हैं । श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा भी है कि:-

“कूकर सूकर करत हैं, खान पान रस भोग ।
तुलसी व्यर्थ न खोइये, यह तन भजिबे योग ॥”

यह दुर्लभ मनुष्यशरीर पा कर आत्मा के कल्याण का उपाय साधन ही मुख्य कर्तव्य है । हां, इस के साथ २ निज धर्म्मोपदेशित विधि निषेध पर ध्यान रखते हुए सांसारिक कार्य्य साधन भी होता जाय तो कोई क्षति नहीं । परन्तु ईश्वराराधन एवम् आत्मोन्नति को मुख्यकर्म्म और शेष सभी कर्म्म को गौण मानना ही बुद्धिमानों का काम है।

---

* इन के पूर्वज महाराज मझौली के दरबार में रहते थे । इन के परदादा ऋषिनाथ काशीनरेश श्री बरिवंडसिंह जू के दरबार में रहने लगे । उन के पुत्र सुप्रसिद्ध कवि ठाकुर हुए, उन के पुत्र कवि धनीराम, जिन के चार पुत्र हुए—कवि शंकर, सेवक, शिवगोपाल और शिवगोबिन्द । सेवक ने अपने दादा ठाकुरकवि से कविता पढ़ी थी । ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि हुए हैं । सभी राजा इन का सम्मान करते थे । सुनते हैं कि रामप्रसन्नसिंह देव जू ने इन्हें गजदान दिया था । ये उन्हीं के वंशधर बाबू हरिशंकर जी के साथ रहते थे जो कि स्वयम् एक सुकवि थे । उन के रचे शृङ्गारशतकादि कई ग्रन्थ छपे हैं ।

इसी प्रकार की बातों के विचार से कदाचित् इन्हों ने अपना दूसरा विवाह न किया।

और एक बात यह भी है कि "जिन रघुवीरचरन अनुरागे। तिन सब भोग रोग सम त्यागे॥" इसी से किसी कवि ने कहा है :—

"सुकृत प्रसंग सों सुसंग जब पावै जीव, अपर विषय को रंग वाके मन भावै ना। यावत कुभंग हैं हिये के सब भंग होत, राग रोष मद की तरंग उठै पावै ना॥ कर धनु शर कटि सोहत निषंग जाके, धरै नित ध्यान तिहि नेकु बिसरावै ना। ऐसे हरि आश्रित के संग रंभा स्वर्गहुं की यदि रचै रंग पै अनंग अंग आवै ना।'

तब इन के लिये दूसरा विवाह न करना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं थी क्योंकि ये भी आदि ही से हरि रंग में रंगे हुए थे।

षष्ठ परिच्छेद।

गुरु शिक्षा।

यों तो ईश्वरप्रेम का रङ्ग हमारे चरित्रनायक के चित्त पर बाल्यावस्था ही से चढ़ा था, बालकाल ही से ये भजन का रस पान करते और हरिभक्ति का भंवरा हो रहे थे तथापि नियमित रीति से दीक्षित हो कर गुरु का उपदेश धारण करना भी बहुत आवश्यक था क्योंकि:—

(१) "गुरु बिनु होय न ज्ञान" (श्री तुलसीदास जी)

(२) "मत कोइ भ्रम भूले संसार।
गुरु बिनु कोइ न उतरसि पार॥"

(१) " गुरुबोहित तारे भववारि ।
गुरुसेवा यम से छुटकार ॥ "

(श्री गुरु नानक)

ऐसे महात्माओं के वाक्य हैं। अतएव विवाह के एक वर्ष पीछे अर्थात् १८५८ ई० में कार्तिक पूर्णिमा को ये श्री स्वामी रामचरणदास * जी के शरणागत हुये। आप का निवासस्थान छपरा ज़िले में बी. एन. डब्ल्यु (B. N. W.) रेलवे के एकमा स्टेशन के समीप परसा गांव में था। महात्मा जी प्रति वर्ष १०-१२ मूर्ति सन्तों के सङ्ग कार्तिक भर श्री सरयू के तीर पर गोदना-सेमरिया में विराजते थे जहां प्रत्येक वर्ष कार्तिक की पूर्णिमा को बड़े समारोह से मेला होता है।

कहते हैं कि न्यायदर्शन के आचार्य्य और प्रवर्तक श्री गौतमऋषि का यहीं आश्रम था जिन की स्त्री श्री आहिल्याजी के शापविमोचन की कथा रामायण में वर्णित हुई है, और यहां उन के नाम से एक पाठशाला स्थापित हुई है जो अब तक वर्तमान है। इसी स्थान में हमारे चरित्रनायक ने सर्वसुखदायक महामूल्यरत्न गुरुमंत्र ग्रहण किया और उसी समय इन के नाम के साथ " श्रीसीतारामशरण " ये कई शब्द भी जोड़े गये और तभी से ये " श्री सीतारामशरणभगवानप्रसाद " कहलाने लगे।

वैष्णवों में यह प्रथा प्रचलित है कि शिष्य होने के समय श्री गुरु महाराज भी उपासनानुसार कोई नाम रख देते हैं। वह नाम चाहे पृथक रखा जाय, चाहे माता पिता वा कुल-परिवार वालों के रखे हुए नाम के साथ जोड़ दिया जाय।

---

* पृष्ठ ५०६ में गुरु परम्परा देखिये।